वनभूमि से बेदखल बैतूल के आदिवासी

■ बाबा मायाराम

हाल ही में जब मैं कई घंटों की दुर्गम यात्रा करके मध्यप्रदेश के बैतूल जिले के सुदूर जंगल में बसे पहाड़ी गांव पहुंचा तब वहां आदिवासियों के जले झोपड़े देखे तो देखता ही रह गया। यहां एक नहीं पूरा गांव का गांव जला था। हालांकि यह घटना होली की रात की है पर ऐसा लग रहा था जैसे यह अनहोनी कल ही घटी हो। घरों में कुछ जली- अधजली लकड़ियां लगी थीं। हवा में राख इधर-उधर उड़ रही थी। घर का सामान जलकर बिखरा पड़ा था। यहां श्मशान घाट जैसा सन्नाटा पसरा पड़ा था।

हमें देख जंगल से निकल कर दो लोग पास आए। वे हमें फलांग भर दूर ढलान में बनी एक छोटी-सी झोपड़ी में ले गए। वहां 15-20 लोग जमा थे। ये वही लोग थे जिनके मकान फूंक दिए गए थे। वे बहुत ही सहमे-सहमे लग रहे थे और उनके चेहरे पर कुछ न कर पाने की लाचारी साफ झलक रही थी। धंसे चेहरे और कद-काठी से मजबूत ये लोग बहुत ही मायूस और निराश नजर आ रहे थे। मुझे यह सब नजारा देख सहज ही मशहूर शायर बशीर बद्र का शेर याद आ गया- लोग टूट जाते हैं, एक घर बनाने में, तुम तरस नहीं खाते हो, बस्तियां जलाने में।

यह बैतूल जिले के चिचौली विकासखंड के पीपलबर्रा गांव का नजारा है। और यह भी तब जब वन अधिकार कानून 2006 पारित हो चुका है और उसके तहत् आदिवासियों को जमीन का अधिकार दिया जा रहा है। आदिवासियों के अधिकारों को पहली बार मान्यता दी जा रही है। इस कानून के तहत 13 दिसंबर, 2005 से पहले वनभूमि पर काबिज लोगों को उस भूमि पर अधिकार व पट्टा मिलेगा। लेकिन अधिकार तो दूर बल्कि आदिवासियों को बेदखल किया जा रहा है। उनकी झोपड़ियां जलाई जा रही हैं। यह सिर्फ पीपलबर्रा गांव की नहीं, दानवाखेड़ा और भंडारपानी की भी कहानी है।

ग्रामीण कहते हैं कि ग्राम पीपलबर्रा, में हम बोड़, गंवाझडप, मांडबादा और झिरना के आदिवासी बाशिंदें हैं। ये सभी गांव विकासखंड चिचौली, जिला बैतूल के अंतर्गत आते हैं। पीपलबर्रा में उनके आजा-पुरखों की पुरानेखेड़े की जमीन है। इस भूमि पर हमारा कब्जा चला आ रहा है। इस पर हम वर्ष 2000 से लगातार कब्जा कर खेती करते आ रहे हैं। हमने इसमें पौधारोपण भी किया है। दो-तीन बार वनविभाग और पुलिस हटा चुकी है। लेकिन फिर भी उनका कब्जा आज भी है। जो कि वन अधिकार कानून 2006 के तहत जायज माना जा सकता है। इसकी कार्रवाई ग्राम की ग्रामसभा कर रही है। हालाकि अब तो ग्राम वन अधिकार समिति के सचिव के पास ही सब दावा फार्म रखे हुए हैं। अगली ग्रामसभा में इसे रखने की बात सचिव ने की है। इसकी प्रक्रिया चल ही रही है कि वनविभाग ने उनं पर प्रकरण दर्ज कर लिया और अब तो उनके उकसावे पर टप्पर भी जला दिए गए, जो वन अधिकार कानून का उल्लंघन माना जा सकता है।

यहां के निवासी मुंशी और उमराव ने बताया कि होली की रात में उनके 31 टप्परों में आग लगा दी गई। कहने को यह किया तो पड़ोसी के गांव के लोग और वन सुरक्षा समिति से जुड़े लोगों ने यह करतूत की है लेकिन इसके पीछे वन विभाग की चाल है। आदिवासी को आदिवासी से लड़ाकर अपना काम करने की नीति है। पहले भी वन विभाग ऐसा दो-तीन बार इस तरह से कर चुका है। 29 अगस्त, 2010 को भी वन सुरक्षा समिति और वन विभाग के कर्मचारियों ने हमारे साथ गाली-गलौच की और टप्पर तोड़े और घर का सामान लूटकर ले गए। जिसकी थाने में और पुलिस अधीक्षक से शिकायत की गई थी।

यहां के खेतों में आदिवासी कोदो-कुटकी की फसल बोते हैं। उनके अनुसार ऊमरडोह के जंगल में पुरानाखेड़ा है। यानी उनके पुरखों की जमीन है। वे इसके सबूत भी बताते हैं। यहां देवी-देवता हैं। आम, इमली के पेड़ हैं। पुराना कुंआ है। इसलिए वे यहां आकर बसे हैं। उन्होंने बताया कि उनके टप्परों को 3 बार तोड़ दिया गया है। और 2 बार जला दिया गया है। हालांकि हाल ही में जो टप्पर जलाए गए हैं, वह पड़ोसी गांव बोड़ के लोगों ने जलाए हैं। लेकिन साजिश वन विभाग की है। जबकि वन अधिकार कानून की धारा 3 (1) (ज) के तहत पुरानेखेड़े (पुराने आवास) में बसने का अधिकार है।

इसी जिले के आरक्षित वन से भंडारपानी भी आदिवासियों को भगाने के लिए उनकी झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी। और बाकी बचे सामान को लूट-पाट कर ले गए। यह घटना वर्ष 2003 की है। इसमें भी वही तरीका अपनाया गया। फूट डालो और राज करो। यानी ग्राम सुरक्षा समिति के लोगों को अपने ही आदिवासी भाइयों के टप्परों को जलाने के लिए उकसाया गया। 1 नवंबर, 2001 को दानवाखेड़ा के 30 घरों को भी इसी तरह लूटपाट कर जला दिया गया।

इन अत्यंत निर्धन और सबसे कम संसाधनों में जीवनयापन करने वाले आदिवासियों पर जुल्म अत्याचार की लंबी दास्तान हैं। अंग्रेजों के समय भी आदिवासियों ने जंगल में निस्तार में रोक के खिलाफ वर्ष 1930 में जंगल सत्याग्रह किया था। इस सत्याग्रह की शुरूआत इसी इलाके में बंजारीढाल नामक स्थान से हुई, जहां से गुजरकर हम दानवाखेड़ा गए थे। असीरगढ़ की पहाड़ियों में आदिवासी नेता गंजनसिंह रहा करता था। बंजारीढाल में आदिवासियों और पुलिस के बीच जमकर संघर्ष हुआ था। यह जंगल सत्याग्रह गांव-गांव में फैल गया था।

पर आजादी मिलने के बाद भी आदिवासियों पर अत्याचार कम नही हुए हैं। बल्कि बदस्तूर जारी हैं। उनकी माली हालत बेहतर नहीं हुई है। दानवाखेड़ा के ग्रामीणों के अनुसार उन्हें बारिश के समय आम की गुठली के आटे की रोटी और महुआ खाना पड़ता है। महुआ उनके लिए पैसा कमाने का जरिया नहीं बल्कि पेट भरने का साधन है। ये आदिवासी गर्मी के समय एकत्र वनोपज बेचकर खाने का बाकी सामान का जुगाड़ करते हैं और किसी तरह अपना जीवनयापन करते हैं।

25 बरसों से आदिवासियों के हक और इज्जत की लड़ाई लड़ने वाले सुनील भाई, जो समाजवादी जनपरिषद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भी हैं, का कहना है कि आदिवासी को आदिवासी से लड़ाने का तरीका वनविभाग ने एक जगह नहीं बल्कि कई जगह अपनाया है। ग्रामीण आदिवासी वनविभाग की चाल को नहीं समझ पाते हैं और अपने ही दूसरे भाईयों पर जुल्म ढाते हैं। जंगल में ही आदिवासियों का विकास संभव है। उन्हें प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार दिया जाए। जमीन का अधिकार दिया जाए और उचित मजदूरी का रेट और तेंदूपत्ता का रेट दिया जाए तो आदिवासियों का विकास वन क्षेत्रों में ही संभव है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं और उनकी यह रिपोर्ट सी. एस. ई. मीडिया फैलोशिप, 2011 के तहत है)

19 April, 2011, Editorial Page,
Daily Chhattisgarh, Raipur, C.G